IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय ज्ञान परम्परा में श्रीमद्भागवद्गीता के बहुविध आयाम – एक दार्शनिक चिन्तन

डॉ० सुबोध कुमार
सहायक प्रध्यापक,
दर्शनशास्त्र विभाग,
गोपेश्वर महाविद्यालय, हथुआ।
(जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा)

परिकल्पना :

भारतीय ज्ञान परम्परा अत्यंत प्राचीन स्वदेशी, बहुआयामी एवं व्यापक ज्ञान परम्परा है। यह ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि–मुनि, संत–महात्मा, ज्ञानी–ध्यानी द्वारा दिया गया एक सनातन परम्परा है। यूँ तो इस परम्परा के बहुविध आयाम हैं, किन्तु विदित हों कि भारतीय अथवा स्वदेशी के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि भारत दो शब्दों के योग से बना है, भा+रत। 'भा' का अर्थ 'भास्कर' (ज्ञान) और 'रत' का अर्थ 'डुबा हुआ' होता है। इस रूप में भारत का अर्थ 'ज्ञान में डुबा हुआ' होता है। भारतीय दर्शन भी यह स्वीकार करता है कि दर्शन 'दृश' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'देखना' होता है, किन्तु यह इन्द्रिय जन्य या चर्मचक्षु से साधारण देखना नहीं है, बल्कि यह ज्ञानचक्षु से देखना 'सत्य का साक्षात्कार (vision of truth) है। इस दार्शनिक अर्थ में भारत केवल इतिहास या भूगोल मात्र नहीं, बल्कि अमरत्व या अमृत का वह ज्ञान है, जिसकी प्राप्ति मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है, जो मूलतः प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा ही है।

प्राचीन काल से ही एक वर्ग ज्ञान जिज्ञासा के लिए दृढ़ संकल्पित होकर कंचन और कामिनी से विरत, काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया–अहंकार, विषय–वासना, आशा–तृष्णा आदि को त्याग कर एकांत जंगल और पहाड़ की ओर प्रस्थान किए तथा एक लम्बे अध्यात्मिक अनुसंधान में जुड़ गए और अन्ततः ये पाये कि मानव शरीर (Human Body) मात्र भौतिक या सांसारिक (नश्वर) नहीं है तथा इसका उद्देश्य मात्र सुख और विषय भोग के लिए नहीं बल्कि इस पंचभौतिक शरीर के अन्दर आत्मस्वरूप सद्चित्तानंद आत्मा है, जो अजर–अमर व अविनाशी है। इस विषय पर विषद विमर्श भगवद्गीता में हुई है, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

सामान्य पृष्ठभूमि :– भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत जितने विषय पर चर्चा की जाती है, वह लगभग सभी श्रीमद्भागवत्गीता में दृष्टिगोचर होता है। गीता में क्या नहीं है– ईश्वरवाद है– अनीश्वरवाद है, शास्वत व अनित्य जीववाद है, देहात्मवाद है, इन्द्रियात्मवाद है, मन आत्मवाद है, श्राद्ध है, तर्पण है, वर्णाश्रम धर्म है, यति धर्म है, गृहस्थ धर्म है, राजधर्म है, गुरु–शिष्य व्यवहार है, हिंसा–अहिंसा है, स्वर्ग–नरक है, पाप–पुण्य, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य, स्वधर्म, नैतिकता व मोक्ष है।[1]

भारतीय प्राचीन परम्परा में गीता एक पवित्र और लोकप्रिय धर्म ग्रन्थ है। डॉ० दास गुप्त ने कहा है कि "हिन्दुओं के प्रायः सभी वर्गों द्वारा गीता एक पवित्रतम् ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।"[2] गीता केवल धार्मिक ही नहीं बल्कि दार्शनिक विचार हैं। गीता में तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र, ब्रह्मविचार और योगशास्त्र प्रचुर मात्रा में निहित है। ऐसा प्रतीत होता है कि गीता समस्त भारतीय दर्शन का निचोड़ व सार है।

गीता का संदेश सार्वभौम है तथा दृष्टिकोण सैद्धान्तिक। गीता की रचना महर्षि व्यास के द्वारा की गई है। आधुनिक काल में बाल गंगाधर तिलक ने गीता–रहस्य, महात्मा गाँधी ने अनासक्ति–योग तथा श्री अरविन्द ने गीता निबंध नाम ग्रन्थ लिखे हैं।

गीता में योग :– योग शब्द 'युग' धातु से बना है, जिसका व्यवहार आत्मा का परमात्मा से मिलन के अर्थ में किया गया है। जहाँ योग–दर्शन में योग का अर्थ 'चित्त के वृत्तियों का निरोध है', वहीं गीता में योग का व्यवहार ईश्वर से मिलन के अर्थ में किया गया है। गीता आत्मा को ईश्वर से मिलने के लिए भिन्न–भिन्न मार्ग निर्देशित करते हैं। जिस प्रकार मन के तीन अंग हैं, ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक उसी प्रकार गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय हुआ है। योग आत्मा के बंधन का अन्त कर उसे ईश्वर की ओर जोड़ती है। इस प्रकार गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। हालांकि कुछ दर्शनों में ज्ञान के द्वारा मोक्ष जैसे– वेदान्त दर्शन, कुछ दर्शनों में भक्ति के द्वारा मोक्ष यथा– रामाउजाचार्य का दर्शन तथा कुछ दर्शनों में कर्म के द्वारा मोक्ष यथा– मीमांसा दर्शन की व्याख्या है, परन्तु गीता में सम्पूर्ण रूप से तीनों का समन्वय हुआ है। जिसे हम बारी–बारी से सभी पर दृष्टि डालेंगे।

ज्ञान योग :– मनुष्य अज्ञानता के कारण बन्धन में रहता है, इसलिए गीता में मोक्ष को अपनाने के लिए ज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। गीता में दो प्रकार के ज्ञान हैं, एक तार्किक ज्ञान और दूसरा अध्यात्मिक ज्ञान। बौद्धिक अथवा तार्किक ज्ञान को 'विज्ञान' तथा अध्यात्मिक ज्ञान को 'ज्ञान' कहा जाता है। तार्किक ज्ञान में ज्ञाता और श्रेय का द्वैत विद्यमान रहता ह, जबकि अध्यात्मिक ज्ञान में ज्ञाता और श्रेय का द्वैत समाप्त हो जाता है। जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करता है, वह सभी भूतों में आत्मा को आत्मा में सभी भूतों को देखता है।[3] ज्ञान की प्राप्ति के लिए मानव को अभ्यास करना पड़ता है। जो निम्न हैं–

1. जो व्यक्ति ज्ञान चाहता ह, उसे शरीर, मन और इन्द्रियों को शुद्ध रखना अतिआवश्यक है। इन्द्रियाँ और मन स्वभावतः चंचल होते हैं, जिस कारण विषयों के प्रति आसक्त होता है। दूषित मन के कारण कर्म भी अशुद्ध हो जाता है, इसलिए ज्ञान प्राप्ति हेतु मानव को निरंतर अभ्यास करना पड़ता है।

2. मन और इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर ईश्वर पर केन्द्रीय करना आवश्यक है।

3. जब साधक को ज्ञान हो जाता है, तब आत्मा और ईश्वर में एकात्म का संबंध हो जाता है और आत्मा ईश्वर का अंग प्रतीत होता है।

ज्ञान से अमृत (अमरत्व) की प्राप्ति होती है। कर्मों की अपवित्रता का नाश होता है और व्यक्ति ईश्वर मय हो जाता है। ज्ञान योग की महत्ता बताते हुए गीता में कहा गया है– 'जो ज्ञाता है, वह हमारे सभी भक्तों में श्रेष्ठ है।' 'जो जानता है वह हमारी अराधना भी करता है।' 'आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थिर हुए चित्त वाले यज्ञ के लिए आचरण करते हुए, सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।'[4] इस प्रकार इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है।

भक्ति मार्ग :– भक्ति– 'भज' शब्द से बना है, जिसका अर्थ ईश्वर–सेवा है। भक्ति मार्ग आमजनों के लिए है। ज्ञान मार्ग का पालन सिर्फ 'विज्ञ–जन' और कर्म मार्ग का पालन सिर्फ धनी जन ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं। परन्तु भक्ति मार्ग में अमीर–गरीब, मूर्ख–विद्वान, ऊँच–नींच सबों के लिए है। केवल पवित्र और निर्मल मन की आवश्यकता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्येदेशे अर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

हे अर्जुन? ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है। वह अपनी माया से सभी प्राणियों को यन्त्रवत घुमाता है।[5] भक्ति के लिए ईश्वर को व्यक्तित्ववान रहना आवश्यक है। निर्गुण और निराकार ब्रह्म हमारी प्रार्थना सुनने में असमर्थ है। जो ईश्वर के प्रति प्रेम, आत्मसमर्पण, श्रद्धा और निष्ठा रखता है, उसे ईश्वर प्यार करता है तथा जो शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति अर्पण करता है, उसे ईश्वर स्वीकार करते हैं। भक्ति के द्वारा जीवात्मा अपने बुड़े कर्मों के फल का भी क्षय कर सकता है। गीता में चार प्रकार के भक्त आर्त्त, जिज्ञासु, अर्याथी और ज्ञानी को स्वीकार गया है। भगवान स्वयं कहा है– "चतुर्विधा भजन्ते माँ जनाः।"[6] रोग निवारण हेतु ईश्वर भक्ति– आर्त्त, ज्ञान प्राप्ति हेतु इच्छा रखने वाले– जिज्ञासु, सांसारिक पदार्थ/द्रव्य आदि के लिए भक्ति–अर्याथी तथा निष्काम बुद्धि से ईश्वर की ज्ञान प्राप्ति के लिए भक्ति को ज्ञानी भक्ति कहा गया है।

गीता की लोकप्रियता का कारण मुख्यतः भक्ति मार्ग को कहा जाता है। बाल गंगाधर तिलक ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "गीता में जो मधुरता प्रेम का रस भरा है, वह उसमें प्रतिपादित भक्ति मार्ग का ही परिणाम है।"[7]

कर्मयोग :– गीता का मुख्य विषय कर्मयोग है। कर्म का अर्थ 'आचरण' है। उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। शुभ कर्म वह है, जो ईश्वर और भक्त की एकता का ज्ञान दें तथा अशुभ कर्म वह है, जिसका आधार अवास्तविक वस्तु है। व्यक्ति को सदैव कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, परन्तु उसे कर्म के फलों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह कर्म के परिणामों के संबंध में चिन्तनशील रहता है। इसलिए गीता में 'निष्काम–कर्म' को जीवन का आदर्श बनाने हेतु निर्देशित किया गया है। निष्काम कर्म का अर्थ कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना ह। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भमाते संगोडस्वेकर्मणि।। 2/47

गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान इस प्रकार कहते हैं, "धनंजय, आसक्ति रहित होकर कर्म का पालन करो। कर्म करने में सफलता मिले या असफलता। दोनों में समता की जो मनोवृत्ति है, उसे ही कर्मयोग कहते हैं।" फिर कहते है– 'योग कर्मषु कौशलम्' अर्थात् समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्म–बन्धन से कटने का उपाय है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि "हे अर्जुन जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है।[8]

इस प्रकार कर्म योग की महिमा का जिक्र करते हुए गीता में कहा गया है कि– "निष्काम कर्मयोगी को ब्रह्म (परमात्मा) शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।"

ईश्वर विचार :– गीता में ईश्वर को परमसत्य माना गया है। ईश्वर अनन्त और ज्ञानस्वरूप है। ईश्वर विश्व की नैतिक व्यवस्था को कायम रखता है। वह जीवों को उनके कर्मों

के अनुसार सुख–दुख प्रदान करता है। ईश्वर कर्मफलदाता हैं। उन्हें प्रकृति और पुरुष से परे माना गया है। उनके दो स्वरूप हैं– व्यक्त और अव्यक्त। भगवान श्रीकृष्ण कहते है– "प्रकृति मेरा स्वरूप है।" जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।" संसार में जितनी विभूतिमान एवं कान्ति युक्त मूर्तियाँ हैं, वे सब मेरे अंश से उत्पन्न हुई है।"[9]

गीता में परमात्मा अव्यक्त स्वरूप में है, जिसे कहा गया है कि "परमात्मा अनादि, निर्गुण और अव्यक्त है। गीता के अनुसार ईश्वरीय प्रकृति के दो पक्ष हैं– परा और अपरा। अपरा प्रकृति अचेतन (जड़) हैं जिसके आठ भेद– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार है। परा प्रकृति चेतन है। गीता अवतारवाद को मानती है। श्रीकृष्ण कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लार्निमवत्ति भारत।
अभ्युत्थान अधर्मस्य, तद्‌त्मानाम् सृजान्हम्।।
परित्राणां साधुना, विनाशाम चद्‌दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे।।

ईश्वर विश्व का निर्माण 'माया' से करता है। वे उपादान और निमित्त दोनों कारण है, इस अर्थ में वे विश्व का सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता और सेहारकर्त्ता तीनों हैं। भगवान कहते हैं– "सम्पूर्ण जगत का धारण पोषण करने वाला मैं ही हूँ। सब का नाश करने वाला भी मैं हो हूँ।[10]

जीवात्मा की धारण :– जीवात्मा को गीता में ईश्वर का अंश कहा गया है। जीवात्मा एक कर्त्ता है। वह शरीरधारो आत्मा है। मनुष्य जीवात्मा है। गीता में आत्मा को अजर और अमर माना गया है। गीता में कहा गया है कि– "आत्मा किसी काल में न जन्मता है और न मरता है– यह अजन्मा, नित्य, शास्वत और पुरातन है।" इसे न शस्त्र काट सकता, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न वायु सुखा सकता है।" यह आत्मा–नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन अर्थात् चिरन्तन है।" चूंकि आत्मा अमर है, इसलिए आत्मा का पुर्नजन्म होता है। जीवात्मा का नया शरीर धारण करना मनुष्य के नवीन वस्त्र धारण करने के समान हैं। "जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर त्यागकर दूसरे नवीन शरीर को धारण करती है।"[11] आत्मा का पुर्नजन्म मोक्ष प्राप्ति हेतु होता है, तथा मोक्ष प्राप्ति मानव जीवन का चरण लक्ष्य है।

स्वधर्म की अवधारणा तथा महत्ता :– स्वधर्म की आचरण को गीता में प्रतिपादित किया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि चार वर्णों को गुण और कर्म के अनुसार मेरे द्वारा रचे गये हैं– "चार्तुवर्णम् मया सृष्टि गुण कर्म विभागशः" ये चार वर्ण हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस प्रकार चार्तुवर्णव्यवस्था ईश्वर द्वारा गुण और कर्म के आधार पर र्निमित की गई है। पृथ्वी में कोई ऐसा प्राणी नहीं, जो प्रकृति से उत्पन्न तीन गुणों से रहित हो। जिनमें सत्व गुण की अधिकता हों, वे ब्राह्मण, जिनमें सत्व मिश्रित रजोगुण की अधिकता हो वे क्षत्रिय है। जिनमें तमों मिश्रित रज गुण की प्रबलता हो उन्हें वैश्य और जिनमें रजो मिश्रित तम प्रधान होता है, उन्हें शूद्र के रूप में रचा गया है। इस प्रकार गुण के आधार पर चारो वर्ण र्निमित किये गये हैं।

चारो वर्ण का कर्म प्रत्येक वर्ण के स्वभावानुसार गुणों के अनुसार अलग–अलग विभाजित किया गया है। अन्तःकरण का निग्रह (शम) इन्द्रियों का दमन (दम), पवित्रता, तप, शांति आदि ब्राह्मण का गुण, शूरवीरता, तजस्विता, धैर्य, बल, युद्ध में रत रहना, रण–कौशल, दान देना तथा स्वामी भाव आदि क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, पशु–पालन, वाणिज्य–व्यवसाय आदि वैश्यों के स्वभाविक कर्म है। सभी वर्णों की सेवा करना शूद्रों का स्वाभाविक कर्म है।[12]

गीता के अनुसार जिस वर्ण का जो स्वाभाविक गुण–कर्म है, वही उसका स्वधर्म है। स्वधर्म अपना–अपना कर्म है। स्वधर्म के पालन से मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त होता है। स्वधर्म–पालन से विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति होती है, जो गीता के मूल ज्ञान निष्काम–कर्म को बल प्रदान करता है।

स्वधर्म पालन का प्रथम महत्व है कि यह सभी कर्मों की समानता पर बल देती है। सभी कर्म मूलतः समान है। इस रूप में मोची और ब्रह्मण दोनों समान हैं, यदि वे स्वधर्म का पालन करते हैं। इस सिद्धान्त का दूसरा महत्व है कि इससे सामाजिक व्यवस्था की रक्षा होती है। स्वधर्म के द्वारा ही व्यक्ति और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध संभव है। इस सिद्धान्त का तीसरा महत्व है कि स्वधर्म–पालन से अध्यात्मिकता का विकास होता है तथा किसी भी कर्म को कर्त्तव्य समझकर सम्पादित करने स अहंकार का नाश होता है। अन्ततः में इस सिद्धान्त से गीता की मूल शिक्षा निष्काम कर्म की उद्देश्य पूर्ण होता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः के रूप में कहा जा सकता है कि गीता का विचार सरल, सहज, स्पष्ट और प्रभावोत्पादक है। गीता की मुख्य प्रवृत्ति समन्वयात्मक कही जा सकती है। गीता के समय सांख्य दर्शन का मत कि मोक्ष की प्राप्ति आत्मा (पुरुष) और प्रकृति के पार्थक्य के ज्ञान से संभव है, प्रचलित थी, वहीं मीमांसा दर्शन का विचार कि मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा पूर्णता प्राप्त कर सकता है, भी प्रचलित था। उपनिषदों में ज्ञान, कर्म और भक्ति की एक साथ चर्चा के बावजूद ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। गीता इन विरोधात्मक प्रवृत्तियों का समन्वय करती हैं इसलिए डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा है–"गीता विरोधात्मक तथ्यों को समन्वय कर उन्हें एक समष्टि के रूप में चित्रित करती है।"[13]

कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्त्तमान युग में गीता का अत्यधिक महत्व है। आज के मानव कई समस्याओं से जूझ रहे हैं। इन समस्याओं का समाधान गीता के अध्ययन व चिन्तन से प्राप्त हो सकता है। अतः आधुनिक युग के मानवों को गीता से प्रेरणा लेनी चाहिए। यदि सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाय तो गीता विज्ञान, कला, मनोविज्ञान व अध्यात्म सभी हैं।

सन्दर्भ :

1. कौसल्यायन, डॉ० भदन्त आनन्द, भगवद्गीता की बुद्धिवादी समीक्षा, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, 2010, पृ०–9
2. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016, प०–66, उद्धृत–भारतीय दर्शन का इतिहास, डॉ० दासगुप्त, भाग–2, पृ०–437
3. उपरोक्त, पृ०–69
4. उपरोक्त, पृ०–69, उद्धृत गीता–VIII-II, गीता–11–59, गीता–IV 27
5. भगवद्गीता की बुद्धिवादी समीक्षा, उपरोक्त, पृ०–44, उद्धृत– गीता–18–16 11 उद्धृत
6. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–70
7. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–71
8. भारतीय दर्शन की रूपरेखा उपरोक्त, पृ०–72, उद्धृत–गीता–2–47–48, 3–9 उद्धृत
9. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–74, उद्धृत–गीता–9–8, 15–7, 10–42 उद्धृत
10. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–75, उद्धृत–गीता–4–7/8, 9–17, 14/135 उद्धृत
11. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–76, उद्धृत–गीता–2–20, 2–13, 2–22 उद्धृत
12. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ० 76–77, उद्धृत–गीता–4–13, 18–40 उद्धृत
13. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, उपरोक्त, पृ०–67, उद्धृत इंडियन फिलॉसफी, भोल्यूम–1, पृ०–529 उद्धृत